श्रमण-सूचक पारिभाषिक शब्द : दशवैकालिक निर्युक्ति के आलोक में

श्रीमती (डॉ.) हेमलता जैन (ललवाणी)

'श्रमण' शब्द की विविध व्याख्याएँ हैं। लेखिका ने दशवैकालिक निर्युक्ति के आलोक में श्रम, सम, शम, सुमन के आधार पर श्रमण की व्याख्या करने के साथ श्रमण की क्रियाओं एवं उपमाओं से भी श्रमण के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। -सम्पादक

जैन आगमों के व्याख्या ग्रन्थों में निर्युक्ति प्राकृत पद्यबद्ध रचना है। निर्युक्ति साहित्य में आगम के कुछ विशेष पारिभाषिक शब्दों को व्याख्यायित किया गया है। प्राचीनता की दृष्टि से व्याख्या-ग्रन्थों में निर्युक्ति का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसमें धर्म, दर्शन, व्याकरण, समाज, इतिहास आदि से जुड़े विषयों का सुन्दर निदर्शन है।

निर्युक्ति क्या है, इसका स्वरूप कैसा होता है, इस सम्बन्ध में कुछ विशेष बिन्दु निम्नांकित हैं-

1. आचार्य शीलांक के अनुसार निर्युक्ति सम्यक् अर्थ का निर्णय कर सूत्र में ही परस्पर संबद्ध अर्थ को प्रकट करती है।[1]
2. आचार्य हरिभद्र के अनुसार क्रिया, कारक, भेद और पर्यायवाची शब्दों द्वारा शब्द की व्याख्या करना या अर्थ प्रकट करना निर्युक्ति है।[2]
3. प्रत्येक शब्द विविध अर्थधायक होता है। कौनसा अर्थ किस प्रसंग में घटित होता है, इसे निर्युक्ति में निक्षेप पद्धति से व्याख्यायित किया गया है। यह निर्युक्ति की भाषागत विशेषता है।
4. निर्युक्ति शब्द की क्रमिक व्याख्या करती है। सर्वप्रथम निक्षेप-निर्युक्ति अर्थ का मात्र कथन करती है। तत्पश्चात् उपोद्घात-निर्युक्ति में 26 प्रकार से उस विषय या शब्द की मीमांसा होती है। फिर सूत्र-स्पर्शिकानिर्युक्ति सूत्र के शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

आवश्यकनिर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु द्वारा दस निर्युक्तियों के लिपिबद्ध होने का उल्लेख मिलता है। निर्युक्ति के रचनाकार और संख्या के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। दशवैकालिक-निर्युक्ति का उन दस निर्युक्तियों के रचना-क्रम में द्वितीय स्थान है। हस्तलिखित प्रति, चूर्णि साहित्य और टीका साहित्य इन तीन स्रोतों से दशवैकालिक निर्युक्ति उपलब्ध होती है। यह निर्युक्ति अध्ययन, श्रमण, काम, भिक्षु आदि कुछ विशेष शब्दों की मौलिक निरुक्ति करती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस निर्युक्ति में नाम-निक्षेप से 'श्रमण' शब्द की व्याख्या कर श्रमण के भावों की स्थितियों के आधार पर और क्रियाओं के आधार पर अनेक उपमाओं से उपमित कर उसका विशद वर्णन किया गया है। प्रस्तुत लेख में श्रमण की उन भाव-स्थितियों और क्रियाओं से उपमित उपमाओं का संकलन कर संयोजन किया गया है, जो निम्न प्रकार है-

1. श्रम के आधार पर-

निर्युक्तिकार कहते हैं-

सामण्ण पुव्वगस्स उ निक्खेवो होइ नाम निप्फन्नो।[3]

इस पर हरिभद्रसूरि ने टीका करते हुए स्पष्ट किया है कि श्रमण का तात्पर्य है श्रम सहन करने वाला। श्रम सहन करने का भाव श्रामण्य है। धैर्य रखना साधुत्व का मूल कारण है जिससे वह 'श्रमण' कहलाता है।

2. समानता के आधार पर-

निर्युक्तिकार कहते हैं-

जह मम न पियं दुक्खं, जाणि य एमेव सव्व जीवाणं।
न हणइ न हणावेइय, सम मणई तेण सो समणो।।[4]

जिस प्रकार मुझे दुःख प्रिय नहीं है उसी प्रकार सभी जीवों को वह प्रतिकूल लगता है, यह जानकर किसी भी जीव को मारता न हो, अन्य से मरवाता न हो और मारने वाले का अनुमोदन भी न करता हो, ऐसा सभी के प्रति समानता रखने वाला 'श्रमण' है।

3. राग-द्वेष का अकर्ता-

निर्युक्तिकार कहते हैं-

नत्थिय सि कोइ वेसो, पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो, एसो अन्नोऽवि पज्जाओ।[5]

जो किसी भी वेश वाले से तुल्य भाव रखता है अर्थात् सभी के साथ समान भाव करता है, किसी पर राग और किसी से भी द्वेष नहीं करता है वह सरलमना 'श्रमण' का ही दूसरा पर्याय है।

4. सुमन वाला -

निर्युक्तिकार कहते हैं-

तो समणो जइ सुमणो, भविणय जह न होइ पावमणो।
सयणे य जणेय समो, समोय माणावमाणेसु।।[6]

वह भी श्रमण है जो सुमन है अर्थात् जिसका द्रव्यमन और भावमन दोनों सरल हो, उसके मन में किसी प्रकार का पाप न हो, जो स्वजन एवं अन्यजन सभी जीवों से प्रेम करे और मान-अपमान में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार एवं दीनता का भाव न रखकर सम भाव से रहे।

5. क्रियाओं के आधार पर- श्रमण द्वारा की गई क्रियाओं के आधार पर निर्युक्तिकार कहते हैं-

पव्वइए अणगारे, पासंडे चरग तावसे भिक्खू।
परिवाइ ए य समणे, निग्गंथे संजए मुत्ते।
तिन्ने ताई दविए, मुणीय खंते य दन्त विरए य।
लूहे तीरट्ठेऽविय हवंति समणस्स नामाइं।।[7]

अर्थात् वही श्रमण निम्नांकित नामों से भी अभिहित होता है-

1. **तापस-** तप करने पर तापस कहलाता है।
2. **भिक्षु-** भिक्षा का आचरण करने पर अथवा आठ कर्म का भेदन करने के लिए उद्यत भिक्षु संज्ञा से अभिहित होता है।
3. **परिव्राजक-** चारों ओर से पाप की वर्जना करने पर परिव्राजक कहा जाता है।
4. **श्रमण-** श्रम सहन करने पर वह श्रमण है।
5. **निर्ग्रन्थ-** बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह ग्रन्थि से निर्गत होने पर निर्ग्रन्थ कहलाता है।
6. **संयत-** अहिंसादि में यतना पूर्वक उद्यम करने पर उसे संयत कहते हैं।
7. **मुक्त-** बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से मुक्त होने पर मुक्त संज्ञा वाला होता है।
8. **तीर्ण-** संसार समुद्र पार करने वाला है इसलिए वह तीर्ण है।
9. **त्राता-** धर्मकथा आदि सुनाकर जन सामान्य को दुःखों से बचाता है, अतः त्राता है।
10. **द्रव्य-** राग-द्वेष आदि भावों से रहित होने के कारण अथवा ज्ञानादि को प्राप्त करने के कारण द्रव्य है।
11. **क्षान्त-** क्रोध को जीत कर क्षमा भाव रखने पर वह शान्त होता है।
12. **दान्त-** विषयों में अपनी इन्द्रियों का दमन करने पर दान्त कहलाता है।
13. **विरत-** प्राणातिपात आदि पापों से निवृत्त रहने पर विरत कहा जाता है।
14. **रुक्ष-** सगे-सम्बन्धियों और मित्रों के स्नेह का त्याग करने के कारण वह रुक्ष है।
15. **तीरार्थी-** संसार सागर को पार करने की इच्छा वाला अथवा सम्यक्त्व आदि उत्तम गुणों को प्राप्त करने के लिए संसार का परिमाण (हद) बांधने वाला वह तीरार्थी है।

6. उपमाओं के आधार पर- सांप, गिरि, सागर, तरुगण आदि अनेक उपमाओं से श्रमण की तुलना करते हुए निर्युक्तिकार कहते हैं-

उरग गिरि जलण सागर, नहयल तरुगण समोय जो होई।
भमर-मिग-धरणि-जलरुह-रवि- पवणसमो जओ समणो।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विसतिणि सवाय वंजुलं कणिया रुप्पल समेण समणेणं।
भमरुं दुरु नड कुक्कुड अदाग समेण होयव्वं ।।[8]

1. **सांप की उपमा-** सांप जिस तरह चूहे आदि के द्वारा खोदे गए बिलों में रहता है एवं एक दृष्टि रखकर चलता है उसी प्रकार साधु दूसरों के द्वारा बनाए गए घर में रहता है और राग-द्वेष से कर्म बंधन होता है इसका ध्यान रखकर सम्यक् दृष्टि से चलता है। अतः श्रमण को उरग (सांप) की उपमा दी गई है।
2. **गिरि-** परीषह आदि की पवन को सहन करने में श्रमण गिरि के समान निष्कम्प होता है।
3. **अग्नि-** अग्नि में जैसे सूखी घास कितनी भी डाली जाए तब भी उसकी तृष्णा समाप्त नहीं होती है वैसे ही श्रमण सूत्रज्ञान और अर्थ ज्ञान का सदा पिपासु होता है। अग्नि को कुछ भी दिया जाए अर्थात् उसमें डाला जाए तो वह सभी को ग्रहण कर लेती है उसी तरह साधु को अशनादि में स्वादिष्ट अस्वादिष्ट जो भी मिलता है वह बिना राग-द्वेष उसे ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार अग्नि की उपमा श्रमण में घटित होती है।
4. **सागर-** श्रमण ज्ञानादि रत्नों से सागर के तुल्य गम्भीर होता है और उसी की तरह अपनी मर्यादा का उल्लघंन नहीं करता है।
5. **आकाश-** आकाश को जिस प्रकार किसी अवलम्बन की आवश्यकता नहीं होती है उसी तरह श्रमण निरालम्बी है।
6. **वृक्ष-** वृक्ष चाहे बांस का हो अथवा चन्दन का सभी वृक्ष पक्षियों के आश्रय स्थल होते हैं और सभी में फूल होते हैं ठीक वैसे ही श्रमण मोक्षार्थी होता है और प्राणिमात्र का आश्रय रूप एवं शत्रु-मित्र में समान भाव वाला होता है। अतः श्रमण वृक्ष समान है।
7. **भ्रमर-** एक जगह से ही रस पान न करने वाले भ्रमर की वृत्ति के तुल्य श्रमण भी एक ही स्थान से भिक्षा ग्रहण नहीं करता है। इसलिए उसे भ्रमर की उपमा से उपमित किया गया है।
8. **मृग-** मृग संसार में सदा शत्रु से डरता है उसी तरह श्रमण संसार के प्रपञ्चों से डरता हुआ रहता है, अतः मृग की उपमा घटित होती है।
9. **पृथिवी-** सभी के भार को वहन करने वाली इस धरती (पृथिवी) के समान श्रमण भी परीषहों को सहन करता है। अतः उसे पृथिवी की उपमा दी गई है।
10. **कमल-** जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानी से ऊँचा उठा होता है और उनसे संश्लिष्ट भी नहीं रहता है उसी प्रकार श्रमण काम-भोग के उत्पन्न होने पर उनसे दूरी बनाए रखता है।
11. **सूर्य-** धर्मास्तिकाय आदि लोक का स्वरूप श्रमण अपने ज्ञान प्रकाश से बताता है, अतः प्रकाशमान होने से इसमें सूर्य की उपमा घटित होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

12. **पवन-** पवन जैसे अप्रतिबद्ध होकर विचरण करती है वैसे ही श्रमण राग-द्वेष से बद्ध न होकर विचरता है।

13. **विष-** विष में सभी रसों का अन्तर्भाव होता है। उसके रस का कोई अनुभव नहीं करना चाहता है। इसी प्रकार कर्म श्रमण को बांधते नहीं है। अतः श्रमण विष तुल्य है।

14. **तृण-** तृण की तरह श्रमण मान का त्याग कर नम्रवान होता है।

15. **कर्णिका पुष्प-** कर्णिका (कनेर) शुचि-अशुचि गंध निरपेक्ष होता है। ठीक उसी प्रकार श्रमण सुगन्धी (चन्दनादि लेप) से रहित होता है।

16. **उत्पल-** उत्पल (कमल) के समान श्रमण सम्यक् चारित्र से धवल और सुगन्धित होता है।

17. **चूहा-** जिस तरह चूहा बिल्ली के डर से मर्यादित होकर चलता है उसी तरह श्रमण देश-काल की मर्यादा से चलता है।

18. **नट-** नट जैसे स्त्री के फंदे में नहीं फंसता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता है वैसे ही श्रमण स्त्रियों के बंधन में नहीं पड़ते हैं और योग्य समय तथा देश में गमन करते हैं।

19. **कुक्कुट-** मुर्गे को खाने की वस्तु बिखेर कर दी जाने पर वह खाता है। श्रमण को भी उनके बड़े साधु भोजन को विभाजित कर देते हैं।

इस प्रकार दशवैकालिक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने चेतन-अचेतन द्रव्यों का ग्रहण कर श्रमण शब्द को सरल और सहज शब्दों से स्पष्ट किया है।

सन्दर्भः-

1. सूत्रकृतांग टीका पृ. 2, आवश्यक टीका पृ. 28, द्रष्टव्यः- तुलसी प्रज्ञा, अप्रेल-सितम्बर 1994 में प्रकाशित समणी कुसुमप्रज्ञा का लेख-निर्युक्ति और उसके रचनाकारः एक विमर्श।
2. आवश्यक हरिभद्रीय टीका, पृ. 363, द्रष्टव्यः- तुलसी प्रज्ञा, अप्रेल-सितम्बर 1994 में प्रकाशित समणी कुसुमप्रज्ञा का लेख-निर्युक्ति और उसके रचनाकारः एक विमर्श।
3. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा सं. 152
4. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा सं. 154
5. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा सं. 155
6. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा सं. 156
7. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा सं. 158 एवं 159
8. दशवैकालिक भाग 2, मूलनिर्युक्ति भाष्य सहित लेखक- मुनि माणक, गीरधरलाल डुंगर सेठ, श्री मोहनलाल जैन श्वेताबर ज्ञान भंडार, गोपीपुरा-सूरत, गाथा 157 के पश्चात् पृष्ठ सं. 6

-तत्त्वाणी भवन, नवचौकिया, जोधपुर (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org